हर मोती में सागर लहरे

गुलाब खंडेलवाल

हर मोती में सागर लहरे

(रचनाकाल -- सन् २०१३-१५)

गुलाब खंडेलवाल

प्रकाशक
श्री बड़ाबाजार कुमारसभा पुस्तकालय
१-सी, मदनमोहन बर्मन स्ट्रीट, कोलकाता - ७०००१७
टेलिफैक्स : (०३३)२२६८-८२१५
ई-मेल : kumarsabha1918@gmail.com
वेबसाइट : www.kumarsabha.com

© गुलाब खंडेलवाल
gulabkhandelwal@gmail.com

सम्पर्क सूत्र :

१. विभा झालानी
vjhalani@hotmail.com

२. प्रतिभा खंडेलवाल
prtbha@yahoo.com

३. शरद खंडेलवाल
Chowk Gaya – 823001
Bihar (India)
Phone : 997-369-4911
sharatkhandelwal@yahoo.com

प्रथम संस्करण – सन् २०१५

मूल्य ५० रुपये

ISBN – 978-93-83683-01-7

मुद्रक :
पवन प्रिंटर्स
J – 9 नवीन शाहदरा
दिल्ली – 32
Ph: 981-091-0160

निरंतर साहित्य और समाज की सेवा में संलग्न
अथक कर्मयोगी
श्री जुगलकिशोरजी जैथलिया
तथा
उनके अनन्य निष्ठावान सहयोगी
श्री महावीर प्रसादजी बजाज
को
सादर, सप्रेम समर्पित

अपनी ओर से

प्रस्तुत संग्रह की कविताएँ लिखी नहीं, लिखा गयी हैं. संभवतः अभ्यासवश. फिर भी प्रत्येक रचना के बाद मुझे आत्मसंतोष का भी अनुभव हुआ है क्योंकि प्रत्येक गीत से अव्यक्त रूप से मेरी अस्मिता जुड़ी हुई है. प्रकाशन का विचार तो बाद में आया.

ये सभी रचनाएँ २०१३-१५ में लिखी गयी हैं. इन कविताओं का रंग कुछ अधिक गहरा है. मेरी रोमांटिक कविताओं की झलक पृष्ठ २०-२३ की रचनाओं में मिलेगी.

'जब जैसा जो जी में आया,
मैंने इन शब्दों में गाया' अथवा
'अब मैं जो लिखता हूँ,
छपने के लिए नहीं,
मन ही मन तपने के लिये है'
आदि द्वारा व्यक्त मेरे भाव इन रचनाओं पर भी लागू होते हैं.

अपनी अंग्रेज़ी की कविता, 'Song of the unknown' में हिन्दी के गीतों की शैली में हर चरण के बाद टेक का प्रयोग अंग्रेज़ी में पहली बार किया गया है.

मैं जानता हूँ कि कविता पढ़ने के इच्छुक लम्बी भूमिकायें नहीं पढ़ना चाहते है अतः मैं अपनी बात अपनी कविताओं के माध्यम से ही कहूँगा.

'मैंने मरु में केसर बोयी
नहीं एक भी अंकुर फूटा, सिकता लाख भिगोयी
जो निर्गंध कनक के लोभी
उनको क्या भू सुरभित हो भी
पर न दिखी जब रसिकों को भी,
जागी पीड़ा सोयी'

अपने मित्रों को अपने प्रेम के प्रतीक के रूप में शब्दों के सिवा और क्या दे सकता हूँ ! यही तो जीवन भर देता आया हूँ. यही भेंट देकर मैं सभी को प्रणाम करता हूँ.

गुलाब खंडेलवाल
१४ सितम्बर, २०१५

पुरोवाक्

कवि स्वयं अपनी सृष्टि का ब्रह्मा है और उसकी सृष्टि ब्रह्मा की सृष्टि के कथमपि न्यून नहीं बल्कि उसके समानांतर होती है. हमारे आदि चिंतकों ने ब्रह्मा की अवधारणा रस रूप में की है. काव्यानंद को ब्रह्मानंद सहोदर कहा गया है या यों कहें कि काव्यानंद ही ब्रह्मानंद की परिकल्पना है --'रसोवैसः'

तुलसीदासजी ने 'होहिं कबित मुकता मनि चारू' में जिस मुक्तामणि की बात कही है, उन्हीं मुक्तामणियों के इस संग्रह के हर मोती में सागर के विलसित होने का अनुभव हुआ है, मोती सदृश शब्दों की चमक का महत्व भी जिनसे समस्त कृतित्व का ताना-बाना बुना गया है.

छंद के तागे से युक्तिपूर्वक मोती की इन गुरियों को पिरोया गया है जिनसे समस्त कृतित्व को अलग-अलग गुरियों में पिरोये जाने के बावजूद पूर्णता का आकार मिलता चलता है.

गुलाबजी का सम्पूर्ण कृतित्व मौलिक उपमानों, अलंकृत शब्दावलियों, वैचारिक अभिधानों और श्रेष्ठ भावों के संपृक्तत्व के कारण विविध परिदृश्यों का निर्माण करता है, रचनाकार ने जीवनदर्शन में जितने सुन्दर सामंजस्य का प्रारम्भ से अंत तक निर्वाह किया है उसे पढ़ने के बाद ज्ञात-अज्ञात से परे कुछ भी शेष नहीं बच पाता है. रचना का सूत्र भी विद्यमान है 'यहीं' इस कृति में और रचना का निष्कर्ष भी.

इस कृति में मानव-जीवन के विभिन्न पहलुओं का चित्रण मानवीय मूल्यों के विकास के लिए किया गया है. फलतः उनकी रचनाओं में सशक्त मूल्यों का मौलिक आख्यान तो मिलता ही है, भक्ति-भावना और जीवन के रहस्य की उन कड़ियों का निर्वाह भी मिलता है जिसे जीवन का साध्य माना गया है.

इस संग्रह की कविताओं का विवेचन के परिप्रेक्ष्य के लिए प्रमुखतया निम्नलिखित आधार निर्मित होते हैं --

१. प्रस्तावना, जो गीत सृजन का आधार है
२. भक्तिपूर्ण रचनाएँ
३. समाज जीवन पर केन्द्रित रचनाएँ
४. जीवन की वर्णनपरक
५. जीवन की संध्याकालीन
६. रहस्यपरक
९. भावानुवाद (रवीन्द्रनाथ ठाकुर के गीतों का)

टेकयुक्त आंग्ल गीत 'एक अजनबी के प्रति' में संवेदना और काव्य के गहन चिंतन और दर्शन के बिम्बात्मक रूपों का वर्णन प्रतीकात्मक परिप्रेक्ष्य में

हुआ मिलता है. अभिव्यंजना की गहराई से जोड़कर देखने पर मानना पड़ता है कि गुलाबजी आत्माभिव्यक्ति को ही काव्य-प्रेरणा के रूप में स्वीकार करते हैं. यह उनके लिए उतनी ही स्वाभाविक है जैसे कोयल के लिए कूकना.

गुलाबजी जीवन जीने की कला का प्रस्थान विंदु प्रेम को ही मानते हैं. उनकी उत्तरवर्ती कविताओं में प्रेम और संवेदना को युगमवत प्रस्तुत किया गया है. भावनाओं का चित्रण करते समय वे प्रेम की सीमा का बंधन तोड़कर सृष्टि के उन उपादानों की व्याख्या करने लगते हैं जिसके बल पर कविता की शक्ति में मानवीय मूल्य सिद्ध होने लगते हैं. उनकी अभिव्यक्ति में पिता-पुत्र का प्रेम, ईश्वर-मानव का प्रेम, ज्ञाता-ज्ञेय का प्रेम आदि रूपों का संसार समाहित मिलता है जिसका अनंत दर्शन भारतीय संस्कृति का रहस्य बनकर उभरता है और जिसकी जिज्ञासा मानव मात्र की ईश्वरीय विभूति बनकर 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की अवधारणा का रूप लेती है.

अमरत्व की जितनी पहचान गुलाबजी को है, उतनी किसी कवि को नहीं हुई. उन्हें मृत्यु का भय नहीं बल्कि मृत्यु को वे अमरत्व का सोपान कहते हैं. वे मृत्यु को जीवन और अमरता का सहचर मानकर चलने वाले 'मुक्त-बोध' का रहस्य या पर्याय कहते हैं.

गहरी निद्रा में नित्य सोकर जहाँ जाते लोग
चिर - निद्रा में भी तो वहीं उन्हें जाना है
भय क्या जब अंतिम क्षण की भी स्थिति नित्य-सी हो
फिरें बस एक से जाकर, एक से न आना है
चिर - निद्रा से भी शेष में, पर भू पर लौटना है
कर्म - फल है पाना यहीं, यद्यपि नया बाना है
परिवेश - मोह त्याग, जीते - जी भी छूटते जो
मृत्यु से क्यों डरे जिसने निज को अमर माना है!

गुलाबजी की कविताओं में जीवन की एषणा है तो जीवन को जीतने की अद्भुत सामर्थ्य भी है. उनकी रचनाओं में इहलौकिक प्रेम है, पारलौकिक वितृष्णा नहीं. जिन सूक्ष्मातिसूक्ष्म रहस्यमयी बातों को वे अपनी कविता में लाने की सहज क्षमता रखते हैं, उन्हें ही एक छोटे पर विस्तृत फलक बनाकर ग़ज़ल में इस तरह पिरो देते हैं कि वह एक गजल कई रचनाओं से भारी पड़ जाती है.

अब खुला राज कि इस लब्ज़ का मानी क्या है
पूछो अब आके मेरे दिल से जबानी क्या है
यह तो बतलाओ कि हम कैसे फिर मिलेंगे यहाँ
तीर पर लौटती लहरों की चिन्हानी क्या है!

सिवा मेरे भगीरथ है कौन, हिन्दी-गजल-गंगा का !
न्याय तो होगा कभी, दूध क्या, पानी क्या है
प्यार तो प्यार ही है, दिल ने या आँखों ने कहा
खोज बेकार है, 'क्या सच है, कहानी क्या है'
बाग़ है झूम रहा तेरी जिस खुशबू से 'गुलाब'
बागवाँ ने अगर मानी कि न मानी, क्या है !

गुलाबजी की रचना में काव्य मंत्रवत् प्रस्फुटित होता है. उन्होंने कविता की महिमा का गान कला की अपरिमित क्षमता के अनुसार किया है. इसलिए उनकी कविता की परिभाषा और ऊँचाई को इन्हीं व्यंजनाओं के माध्यम से लिखा और कहा है.

अंतर में भावना का जब उफ़ान आता है
शब्द जग जाते, अक्षरों में प्राण आता है
दीप ले तुकों के छंद-लय में ढूँढना है व्यर्थ
मंत्र काव्य का तो आप कानोकान आता है

इसी परिप्रेक्ष्य में अपने गीतों के विषय में उनका उद्घोष भी यही है –

जब तक स्वर का लेश रहेगा
तब तक शब्दों में मेरा भी जीवन शेष रहेगा
ज्यों मानस में तुलसी जीवित
गीतों में रवीन्द्र हैं गुंजित
त्यों निज कृति में मेरा भी चित्
चिर अनिमेष रहेगा

अंतस से जन्मी कवि की चिर कामना मातृभूमि के चरणों में कैसे समर्पित हो उठती हैं उसकी बहुआयामी परिणति देखने योग्य है –

काल का सिरहाना, ओढ़े चादर इतिहास की
सो रहा हूँ मैं भू पर वाल्मीकि - व्यास की
कभी तो घिरे महान कवियों से सुधीजन को
आयेगी सुध इस भारती के मूक दास की

जिस वागर्थ एवं सम्पृक्ति के माध्यम से कालिदास ने शिव और पार्वती की अभेदता का चित्रण किया है, उसी अभेदता को तुलसी ने 'भव भव विभव' और 'स्वबश विहारिणी' से जोड़कर व्यक्त किया है

कला की व्याख्या का गुण कला में ही विद्यमान होता है. काव्य-कला और पार्वती दोनों ही विश्व-विमोहिनी हैं; जिसके मन में जैसा चाहती हैं, वैसा भाव भर देती हैं, फिर उनकी व्याख्या कैसे संभव है?

और इसी को बहुत कुछ नयी सृष्टि के रूप में गुलाब खंडेलवाल ने व्यक्त किया है. जिन कवियों की अमित महिमा का गान करके कवि अद्यावधि कविता के महत्त्व का प्रतिपादन कर रहे हैं उन रचनाकारों की कलात्मक प्रतिभा को 'विस्वमोहिनी स्वबस विहारिणि' का जो वरदान प्राप्त है, उसकी भावभूमि का चित्रण महाकवि गुलाब खंडेलवाल जैसे माँ भारती की महिमा के गायक कवियों द्वारा सदा होता रहा है और होता रहेगा.

इस संग्रह के प्रत्येक गीत से कवि की अस्मिता जुड़ी हुई है. इस दृष्टि से भी 'हर मोती में सागर लहरे' का सदा विशेष महत्त्व रहेगा. इत्यलम्.

प्रो. यज्ञप्रसाद तिवारी
प्रोफ़ेसर एवं विभाग प्रमुख (पूर्व)
हिन्दी विभाग
राष्ट्रसंत तुकड़ोजी महाराज नागपुर विश्वविद्यालय
नागपुर (महाराष्ट्र)

अनुक्रम

अकारादि क्रम से

	कविताएँ	पृष्ठ संख्या
	अ	
१.	अब तुम बुरा कहो या भला	३२
२.	अब तो मुझे टिकानी ही होगी अपनी यह नाव	३६
३.	अब खुला राज कि इस लब्ज़ का मानी क्या है	१३
४.	अब तो आशा एक तुम्हारी	५
५.	अब न मधुशाला है न साकी न घट, प्याले	१४
६.	अमृत भरा चाँद चमकता था जो गगन में	३
७.	अंतर में भावना का जब उफान आता है	१७
	आ	
८.	आम पाये बबूल भी बोकर	२५
९.	इसी मार्ग से सब गये	१४
१०.	उसकी कृपा में यदि विश्वास तेरा सच्चा है	६
११.	एक-एक दिन	३५
	क	
१२.	कागज़ पर की एक लकीर	३०
१३.	काया तो मल-मलकर धोयी	१०
१४.	काल का सिरहाना, ओढ़े चादर इतिहास की	२
१५.	काव्य महाकवियों के, सुरमय गुणियों के साज	१७
१६.	काव्य में दूँ सीख	६
१७.	किधर से आये अबकी धारा	२६
१८.	किस सुर में मैं गाऊँ	१९
	ग	
१९.	गहरी निद्रा से नित्य सोकर जहाँ जाते लोग	१२

च

२०. चाहे विश्वास करो चाहे करो अविश्वास ६
२१. चिंता निंदकों की नहीं, कहें जो हो कहना ७

ज

२२. जब तक स्वर का लेश रहेगा १८
२३. जब सब करके हारा ३३
२४. जाओ हम रक्खेंगे याद ३७
२५. जिसके बल पर था तुमसे माँगा ६
२६. जिसको तूने दिया सहारा ४
२७. जिसे ढूँढने में ज़माने लगे हैं १५
२८. जितना शब्दों में रख पाया ३
२९ जो लिखा उसे करके दिखाना होगा १५

त

३०. तूने जो वरदान दिये २९
३१. तेरे लिए जो भी होता है यहाँ ६

द

३२. देखा है मैंने सामने इन आँखों के ८
३३. देनी हो मुझको जो भी व्यथा मनचाही, दें ७

न

३४. नया रूप, नव काया २८

प

३५. प्रभु ! यह ! श्रद्धा की डोर न टूटे ३४

म

३६. मत कुछ लिखें, मत कुछ कहें २४
३७. मधुमय स्मृति बन रहतीं मन में १७
३८. मिट्टी के रथ को लिये मिट्टी के ये घोड़े १४
३९. मिलके बिछुड़े जो उनका ग़म हूँ मैं १६

४०.	मुक्ति में माना, सभी दग्ध हों पाप	१५
४१.	मैंने उलटी कथा कही	२७
४२.	मैंने द्वार निकट जब गाये	२०
४३.	मैं हिमालय की बड़ी चोटियों पे फिरता हूँ	१६
४४.	मोह अपनों का और अपने का	७
	र	
४५.	रत्नहार ग्रीवा में सदा हूँ जिसे टाँगे	१४
४६.	रूप नहीं उसका ही, स्वर्ग से चुरा जो लाया	२३
४७.	रूप की माधुरी से मन भर नहीं रहा है	२१
४८.	रूप की तृष्णा मिटी न मेटे	२२
	ल	
४९.	लोग सभी तट पर आ-आकर ठहरे	१
	स	
५०.	सताती है अब भी तो चिंता	९
५१.	सुरों की धारा में है बहना	३१
५२.	श्रम से मिले धन, मान, गुरु से तत्वबोध, ज्ञान	११
	ह	
५३.	होगा जो होना है	२
	अंग्रेज़ी कविता	
५४.	Song of the Unknown	३८
५५.	I am the uprooted	३९
	रवीन्द्रनाथ की कविताओं का भावानुवाद	
५६.	अग्नि की पारसमणि छुआओ प्राण से	४१
५७.	आनंदलोक के मंगल आलोक में विराजो	४३

लोग सभी तट पर आ-आकर ठहरे
मैं ही एक डूबता गया गहरे
क्यों न चमकें मोती मेरे शब्दों के
जब कि हर मोती में सागर लहरे

काल का सिरहाना, ओढ़े चादर इतिहास की
सो रहा हूँ मैं भू पर वाल्मीकि - व्यास की
कमी तो घिरे महान कवियों से सुधीजन को
आयेगी सुध इस भारती के मूक दास की

* * * * *

होगा जो होना है
उसका क्या रोना है!
सुध ले अब उसकी
जो बीज नया बोना है

जितना शब्दों में रख पाया
उतना तो मेरा मैं तुमसे
भूलेगा न भुलाया
जो खोया, पाया जीवन में
बिम्बित है स्वर के दर्पण में
मिलूँ तुम्हें अब-सा ही बन मैं
जाऊँ जभी बुलाया

* * * *

अमृतभरा चाँद, चमकता था जो गगन में
और भी सुहाना हुआ, मेरे काव्य-वन में
और ही थी शोभा उसकी, अक्षरों के घूँघट में
उतरी नयी दुल्हन-सी जब चाँदनी भुवन में

जिसको तूने दिया सहारा
क्या फिर शेष रहा था पाना
उसको जग के द्वारा !

साथ भले ही सब ने छोड़ा
तूने तो मुँह कभी न मोड़ा
पितापुत्र - संबंध न तोड़ा
धरी बाँह, जब हारा

पर क्या कहूँ प्रकृति इस मन की
मैंने भिक्षुक - वृत्ति ग्रहण की
जा-जा ड्योढ़ी पर जन-जन की
कौड़ी-हित सिर मारा

कौन यहाँ सुनता, प्रभु! मेरी!
कर दे क्षमा, आस बस तेरी
पूछा भी था, 'क्यों की देरी'
जब गजेन्द्र को तारा !

जिसको तूने दिया सहारा
क्या फिर शेष रहा था पाना
उसको जग के द्वारा !

अब तो आशा एक तुम्हारी
भोग चुका जीवन जैसा भी, हलका था या भारी

अब आगे की सुध लेंगे मेरे उत्तराधिकारी
अपना-अपना दिन सबका, है अपनी-अपनी बारी

एक - एक कर चले गये दल के अग्रिम ध्वजधारी
लड़े काल से किन्तु शेष में सबने बाजी हारी

रचनेवाले ने थी कितनी रुचि से रची सँवारी
कैसे मेटी गयीं, बना वे छवियाँ प्यारी - प्यारी

उखड़ी सभा, गयी उठ घर को ज्येष्ठ मंडली सारी
मुझको भी अब चलने की करनी होगी तय्यारी

अब तो आशा एक तुम्हारी
भोग चुका जीवन जैसा भी हलका था या भारी

जिसके बल पर था तुमसे माँगा और पाया भी
रीझा कभी खीझा तुमसे रूठा, तुम्हें गाया भी
डिगने न देना कभी, प्रभु ! वह विश्वास मेरा
रहूँ मैं आश्वस्त, सम्मुख तम हो, सघन छाया भी

* * * * *

चाहे विश्वास करो चाहे करो अविश्वास
चाहे दूर समझो उसे चाहे पास से भी पास
प्यार करो या न करो, मानो या न मानो उसे
उसकी कृपा न करेगी कभी तुम्हें निराश

* * * * *

उसकी कृपा में यदि विश्वास तेरा सच्चा है
तेरे लिए जो भी होता है यहाँ अच्छा है
सोच तो यह, कौन रक्षा कर रहा निरंतर तेरी
तू जो खेल रहा साँप से अबोध बच्चा है

* * * * *

काव्य में दूँ सीख, यह तो दावा नहीं मेरा है
शिक्षक और होंगे, मुझे आप तम ने घेरा है
बात बस यही है, मैंने व्यथा निज स्वरों में भर
गुण गाये उसके जो इस सृष्टि का चितेरा है

चिंता निंदकों की नहीं, कहें जो हो कहना
दुखप्रद है रसिक-जनों का विरक्त रहना
अनदेखा करने से तो दोष दिखाना ही भला
निंदा से कठिन है उपेक्षा की पीर सहना

* * * * *

देनी हो मुझको जो भी व्यथा मनचाही, दें
कविता में भले ही नहीं आप वाहवाही दें
'क्या ही स्मरण-शक्ति, वाह! क्या ही सुरीला है कंठ,'
विनय यही, ऐसी प्रशंसाएँ न सुनाई दें

* * * * *

मोह अपनों का और अपने का
मैंने चित् से उखाड़कर फेंका
कोई काँटा ही चुभा, उड़ना छोड़
पाँव जब भी था भूमि पर टेका

देखा है मैंने सामने इन आँखों के
उड़ते हुए पंछी को बिना पाँखों के
बेसर के एक शख्स को बेहरवा-हथियार
सर काटकर ले जाते हुए लाखों के

सताती है अब भी तो चिंता
एक - एक कर जब अपने जाने के दिन हूँ गिनता

मन के दर्पण में अब भी छायी है मोह - मलिनता
जैसे श्वान विकल हो मुख का ग्रास देखकर छिनता

भाव गहन, भाषा सुबोध, रस - अनुभव में न कठिनता
क्या देगा यह काव्य देव - गुरु - ऋण से मुझे उऋणता?

पायी सदा कृपा जिसकी, क्या करे न सुदिन कुदिनता
जिससे चलते क्षण स्मृति कर मन, नाचे, ता-धिन-धिन-ता!

सताती है अब भी तो चिंता
एक - एक कर जब अपने जाने के दिन हूँ गिनता

काया तो मल - मलकर धोयी
पर कब तक ठहरेगी, यह भी
बता सकेगा कोई !

चले गये हों कितने ही नर
निज काया का मोह छोड़कर
पर मैंने अब तक भी इस पर
निज आसक्ति न खोयी

माना, यह जड़ मोह वृथा हो
तन फिर भी मिल जाय नया हो
पर क्या मिलें, विरह जिनका हो
जागे जब चिति सोयी!

हो भी आगे की तैयारी
क्यों न मुझे काया हो प्यारी !
सह व्याधियाँ इसीने सारी
आत्मिक-ज्योति सँजोयी

काया तो मल - मलकर धोयी
पर कब तक ठहरेगी, यह भी
बता सकेगा कोई !

श्रम से मिले धन, मान, गुरु से तत्वबोध, ज्ञान
योग के बल से चूल पर्वत की भी हिलती है
साधना से सिद्धि, देवाराधना से सुख-समृद्धि
तप से कुण्डलिनी की सुषुप्त कली खिलती है
मन्त्रों की शक्ति से है मिलती कुग्रहों से मुक्ति
भगवत् कृपा से दैव आपदा भी झिलती है
सब कुछ पाने का है उपाय, यत्न लाख करो
एक बस बीती हुई आयु नहीं मिलती है

गहरी निद्रा में नित्य सोकर जहाँ जाते लोग
चिर - निद्रा में भी तो वहीं उन्हें जाना है
भय क्या जब अंतिम क्षण की भी स्थिति नित्य-सी हो
फिरें बस एक से जाकर, एक से न आना है
चिर - निद्रा से भी शेष में, पर भू पर लौटना है
कर्म - फल है पाना यहीं, यद्यपि नया बाना है
परिवेश - मोह त्याग, जीते - जी भी छूटते जो
मृत्यु से क्यों डरे जिसने निज को अमर माना है!

ग़ज़ल

अब खुला राज कि इस लब्ज़ का मानी क्या है
पूछो अब आके मेरे दिल से जवानी क्या है

यह तो बतलाओ कि हम कैसे फिर मिलेंगे यहाँ
तीर पर लौटती लहरों की चिन्हानी क्या है!

सिवा मेरे भगीरथ है कौन, हिन्दी-गजल-गंगा का!
न्याय तो होगा कभी, दूध क्या, पानी क्या है

प्यार तो प्यार ही है, दिल ने या आँखों ने कहा
खोज बेकार है, 'क्या सच है, कहानी क्या है'

बाग़ है झूम रहा तेरी जिस खुशबू से 'गुलाब'
बागवाँ ने अगर मानी कि न मानी, क्या है!

मिट्टी के रथ को लिये मिट्टी के ये घोड़े
जिसकी कृपा से फिर रहे हैं दौड़े - दौड़े
फूल तो रहा तू, कभी सोचा भी गत अपनी
सारथि जब इन अश्वों की रास छोड़े!

* * * * *

रत्न - हार ग्रीवा में सदा हूँ जिसे टाँगे
टिकेगा भी कब तक काल-दंशनों के आगे!
धीरे - धीरे मंद हो रही है दीप्ति इसकी
एक - एक कर के टूटने लगे हैं धागे

* * * * *

अब न मधुशाला है, न साकी है, न घट, प्याले
उड़ रही धूल जहाँ जुड़ते रहे मतवाले
मैं ही बस यादें उनकी दिल में लिये बैठा हूँ
एक दिन चल दूँगा मैं भी अपनी मधुर स्मृतियाँ ले

* * * * *

इसी मार्ग से सब गये, क्या राजा, क्या रंक!
क्या तू ही सुविशेष है, काल न मारे डंक!

जिसे ढूँढने में जमाने लगे हैं
सिवान उस शहर के भी आने लगे हैं
मगर मेरी मंजिल नहीं आखिरी यह
भले ही कदम लड़खड़ाने लगे हैं

* * * * *

जो लिखा उसे करके दिखाना होगा
हँसते हुए इस बाग से जाना होगा
मानो सुहागरात में दुल्हन हो मिली
यों मौत को सीने से लगाना होगा

* * * * *

मुक्ति में, माना सभी दग्ध हों पाप
सुने देव - वीणा के मधुर आलाप
कौन सुख लूटे, पर वैकुंठ के भी
मुक्त होकर रहे नहीं यदि आप?

मिलके बिछुड़े जो, उनका गम हूँ मैं
सावन की घटाओं से नहीं कम हूँ मैं
गाती हो जिसे विरहिन कोई पिछली रात
उस दर्दभरे गीत का सरगम हूँ मैं

* * * * *

मैं हिमालय की बड़ी चोटियों पे फिरता हूँ
तुम मुझे भीड़ में सड़कों की कहाँ पाओगे!
हाँ, अगर प्यार में तड़पे हो कभी मुझ-से ही
मुझको पढ़ते ही मेरे पास पहुँच जाओगे

अंतर में भावना का जब उफान आता है
शब्द जग जाते, अक्षरों में प्राण आता है
दीप ले तुकों के छंद-लय में ढूँढना है व्यर्थ
मंत्र काव्य का तो आप कानोकान आता है

* * * * *

काव्य महाकवियों के, सुरमय गुणियों के साज
शत-शत कलाकृतियाँ, मूर्तियाँ रच शिल्पीसमाज
चित्रित कर सकेंगे नहीं प्रेम की उस चितवन का
नारी लिये आती जिसे नयनों में भरे लाज

* * * * *

मधुमय स्मृति बन रहतीं मन में प्रेम-मिलन की घड़ियाँ
मृदु सुगंध देतीं गुलाब की सूखी भी पंखड़ियाँ

जब तक स्वर का लेश रहेगा
तब तक शब्दों में मेरा भी जीवन शेष रहेगा

ज्यों मानस में तुलसी जीवित
गीतों में रवीन्द्र हैं गुंजित
त्यों निज कृति में मेरा भी चित्
चिर अनिमेष रहेगा

कीर्ति-स्तंभ से स्मृति हो पल भर
वह भी बस देखें जब जाकर
झूमे पर मेरी कविता पर
जो जिस देश रहेगा

मेरे गीतों के हर पद का
भाव धरेगा रूप जलद का
चातक-सा 'प्रसाद-परिषद्' का
फिर परिवेश रहेगा

जब तक स्वर का लेश रहेगा
तब तक शब्दों में मेरा भी जीवन शेष रहेगा

('प्रसाद-परिषद्' उस संस्था का नाम है जो 'प्रसाद'जी के नाम पर बनारस में बनायी गयी वहाँ के प्रमुख साहित्यिकों की संस्था थी और जिसमें सन् १९४० से सन् '४३ तक सदस्य के रूप में मैं कविता पढ़ा करता था.)

किस सुर में मैं गाऊँ !
तीन-तीन देवियाँ खड़ी हैं,
किस पर फूल चढाऊँ !

अंग्रेजी का रूप सुनहला
उर्दू का नहले पर दहला
स्नेह मिला पर जिससे पहला
कैसे उसे भुलाऊँ !

उधर बायरन फिर-फिर टेरे
ग़ालिब इधर खड़े पथ घेरे
किन्तु पर्यटनस्थल जो मेरे
कुटी वहाँ क्यों छाऊँ !

घड़ी - दो घड़ी टहल - घूमकर
लौट चुका हूँ मैं अपने घर
क्यों न, जहाँ की सुबह, वहीं पर
दिन का शेष बिताऊँ !

किस सुर में मैं गाऊँ !
तीन-तीन देवियाँ खड़ी हैं,
किस पर फूल चढाऊँ !

मैंने द्वार-निकट जब गाये
पूछा चकित शारदा ने,
'ये गीत कहाँ से लाये?'

मैं बोला, 'मैंने ही, देवी!
रचा इन्हें रह नित पदसेवी'
बोली वह, 'थे यदि रचते ही
पद, क्यों रहे छिपाये?

'कभी पार्षदों के भी द्वारा
सुना नहीं क्यों नाम तुम्हारा?'
मैंने कहा कि, 'यह स्वर-धारा
वे भी देख न पाये'

'था अवकाश न, नाचूँ, गाऊँ
उन्हें मनाकर, नाम कमाऊँ
धुन थी यही, यहाँ जब आऊँ
रहूँ न आँख चुराये'

मैंने द्वार-निकट जब गाये
पूछा चकित शारदा ने,
'ये गीत कहाँ से लाये?'

रूप की माधुरी से मन भर नहीं रहा है
कितनी भी पीता हूँ छवि-सुरा
दृष्टि रहती है तृषातुरा
हाय! इस मधु का हो बुरा
नशा उतर नहीं रहा है

इतना मधुर जो, वह गरल क्यों हो!
फूल सुंदर है, तिक्त फल क्यों हो!
यह संसार तेरा, मृगजल क्यों हो!
भले ही तृषा हर नहीं रहा है
रूप की माधुरी से मन भर नहीं रहा है

रूप की तृष्णा मिटी न मेटे
नयनों से पी - पीकर देखा,
भुज भर-भर भी भेंटे

लगा कि और न स्वर्ग कहीं है
कुछ इस रस के पार नहीं है
दूर गगन का चाँद यहीं है
छू लें लेटे - लेटे

मन को, पर संतोष न आया
पा - पाकर भी उसे न पाया
निष्फल नित छूने छवि-छाया
तन के तार उमेठे

पर क्यों हो अतृप्ति का रोना !
सुखद तृषा का भी है होना
चिर - अरूप है रूप सलोना
बँधे न बाँह लपेटे

रूप की तृष्णा मिटी न मेटे
नयनों से पी - पीकर देखा,
भुज भर-भर भी भेंटे

रूप नहीं उसका ही, स्वर्ग से चुरा जो लाया
दर्पण में दर्पित हो जिसने, नित नया सजाया है
नहीं उसका ही, होंठ चूम, कलेजे से लगा
जिसने उसे बाहुओं के घेरे में छिपाया है
रूप उसका भी है, पलटकर जिसने देख लिया
जिसने उसे सुना है, पढ़ा है और गाया है
स्मृति की मंजूषा में संजोये चिर-काल जिसने
जब जी में आया, उसपर ध्यान भी लगाया है

मत कुछ लिखें, मत कुछ कहें
क्या, जो मेरी बारी में
लेखाधिकारी चुप ही रहें!

मत मिले स्थान कवियों की सूची में भी मुझे
मैं तो रहूँगा हृदय में जन-जन के
अधरों में गुंजन बनके
साध यही, शब्द मेरे कागज से उठ-उठकर
नयनों से अश्रु बन बहें

मौन गिरिघाटियों में मणियाँ चुनता हुआ
क्या, जो वणिको को मैं दिख नहीं पाया!
नहीं भारती ने तो भुलाया
जिन पर करे वह पुष्प–वृष्टि, वे काँटों की चुभन
क्यों न सहज भाव से सहें!

मत कुछ लिखें, मत कुछ कहें
क्या, जो मेरी बारी में
लेखाधिकारी चुप ही रहें!

आम पाये बबूल भी बोकर
उलटे देखे नियम प्रकृति के
मैंने, तेरा होकर

विष-पात्रों ने अमृत पिलाये
काल - भुजंग हार बन आये
नाव डूबती तट पर लाये
झंझा सिर पर ढोकर

हुई दैव की गणना झूठी
लौटी आप भाग्यश्री रूठी
कविताएँ बन गयीं अनूठी
मणियाँ दीं जो रोकर

आम पाये बबूल भी बोकर
उलटे देखे नियम प्रकृति के
मैंने, तेरा होकर

किधर से आये अबकी धारा?
अंबर से, गिरि से, वन से या तोड़ अतल की कारा?

खुले दसों दिशि द्वार, भरा है छिद्रों से नभ सारा
अबकी किस तट पर कैसे, प्रभु ! पाऊँ प्रेम तुम्हारा?

क्या मेरा विश्वास अटल जो कभी न तम से हारा
अबकी बार मुझे दे पथ में कोई नया सहारा?
किधर से आये अबकी धारा?

मैंने उलटी कथा कही
क्षार सिंधु - जल ले गंगा नगपति की ओर बही

क्या भगवान भक्त बन जायें ! दूध कि मथे दही!
पर मेरे जीवन में तो कौतुक था घटा यही

यह प्रभुकृपा अहैतुक मैंने कह दी सही - सही
तुम समझोगे इसे स्वयं अनुभव करने पर ही
मैंने उल्टी कथा कही

नया रूप, नव काया
फिर से मुझे नया करने यह
कौन अपरिचित आया !

अपनी बाहों में भर लेगा
सुना, मुझे यह नया करेगा!
फिरसे एक नया घर देगा
सब विधि सजा-सजाया

पर मिलते कर्मानुसार घर
शब्दों में ही खाता चक्कर
श्रेय-मार्ग जो गाया उस पर
आप न मैं चल पाया

फिर भी सोच न कर, मन मेरे!
स्वर अभुक्त भी तुच्छ न तेरे
वह तो तुझसे दृष्टि न फेरे
तूने जिसको गाया

नया रूप, नव काया
फिरसे मुझे नया करने यह
कौन अपरिचित आया !

तूने जो वरदान दिये
सारे रत्न - विभूषण उसकी द्युति ने तुच्छ किये

मत सन्मानें लोग मुझे फूलों के हार लिये
जिसने चखा अमृत, क्या यदि प्याऊ का जल न पिये!

कितना भी अज्ञात रहूँ मैं, अपने ओंठ सिये!
लीक खींचते चले काल पर तो रथ के पहिये

जो पल के शृंगार, उन्हें पाकर भी क्या करिये!
भक्त, शारदे! तेरा तो मरकर भी सदा जिये

तूने जो वरदान दिये
सारे रत्न - विभूषण उसकी द्युति ने तुच्छ किये

कागज़ पर की एक लकीर
जिसे रक्त से खींचा मैंने, निज मर्मस्थल चीर

बाँध न सकती इसे रावणी लोहे की जंजीर
कर न सकें बंदी ऊँचे पाषाणों के प्राचीर

कवियों में रसमूर्ति, युद्ध में वीरों से भी वीर
गुणियों में गुणमय, मुनियों के सुर में गुरु, गंभीर

रह निरपेक्ष लोक-रुचि से, यह यश को नहीं अधीर
व्यर्थ बनें इस पर अन्याय, उपेक्षाओं के तीर

जिन्हें भाव की परख, गयी हो रुला प्रेम की पीर
वे इसमें नित सुनें भारती के पग की मंजीर

कागज़ पर की एक लकीर
जिसे रक्त से खींचा मैंने, निज मर्मस्थल चीर

सुरों की धारा में है बहना
मुझे शेष तक इस जग में
कवि बनकर ही है रहना

करना था जो, किया न कुछ भी
पा-पाकर भी दिया न कुछ भी
जिया बहुत पर जिया न कुछ भी
क्यों मिथ्या दुख सहना !

शब्द दिये शत रूप सजाये
नित नव भावलोक दिखलाये
गीत यहाँ मैंने जो गाये
उन्हें तुच्छ क्यों कहना !

काल-दशन से कौन बचा है !
किसे न खा वह गया पचा है !
पर मैंने जो महल रचा है
कभी न जाने ढहना

अब तुम बुरा कहो या भला
खोटा सिक्का भी हो जीवन, फिर भी खूब चला

पता नहीं कि काल में कब तक ठहरे काव्य-कला
अब मैंने तो आँधी में यह दीपक दिया जला

हुए बहुत, मैं ही न एक इस जग में हूँ पहला
कितनों का कटु वर्तमान भावी यश में बदला

यश - अभुक्त भी कार्य - मुक्त जो पूर्णकाम निकला
द्विगुणित हो द्युति, उसकी जब भी फिर से जाय ढला

जब सब करके हारा
तब, प्रभु ! तुम्हें पुकारा

तंत्र - मंत्र थे झूठे
सबने मिलकर लूटे
एक - एककर सारे
जल - बुद्बुद् - से फूटे

जब कोई न सहारा
तब, प्रभु ! तुम्हें पुकारा

दिया जगत का देना
लिया जगत से लेना
जब तुम रक्षक, भय क्या !
घेरे तम की सेना
मरूँ न उसका मारा

जब कोई न सहारा
तब, प्रभु ! तुम्हें पुकारा

प्रभु ! यह ! श्रद्धा की डोर न टूटे
छूटें देश, बन्धु, प्रियजन, पर यह अवलंब न छूटे

कितनी भी दे चोट, काल जीवन की मणियाँ लूटे
पर मन के तारों से 'मैं हूँ अमर' यही सुर फूटे

डिगे न वह विश्वास, किये जिसने जग-वैभव झूठे
रखते हैं चिर-सुदृढ़ जिसे, प्रभु ! तेरे वचन अनूठे

तेरे बल से ही मरु में भी उगा नये नित बूटे
कीर्ति - विधाताओं को मैंने दिखला दिये अँगूठे

प्रभु ! यह ! श्रद्धा की डोर न टूटे
छूटें देश, बन्धु, प्रियजन, पर यह अवलंब न छूटे

एक-एक दिन

रच-पचकर गढे हुए एक-एक दिन
सोने से मढे हुए एक - एक दिन
जाने मुझे लेकर कहाँ भागे चले जा रहे
घोड़े पर चढ़े हुए एक-एक दिन

गा - गाकर बिताते हुए एक - एक दिन
आँकता मैं जाते हुए एक - एक दिन
फरसा ले जीवन-तरु काटने आते, फिर भी
प्रिय हैं मुझे, आते हुए एक - एक दिन

रँगे रंग - रलियों से एक - एक दिन
उड़ गये तितलियों - से एक - एक दिन
कौड़ी मोल बेचा जिन्हें, हीरे अनमोल हैं अब
गिनता जो उँगलियों से एक - एक दिन

काल के हवाले हुए एक-एक दिन
एक से बढ़कर निराले एक-एक दिन
स्मृति के द्वार से आकर मुझे रुला जाते हैं
लौटकर न आनेवाले एक-एक दिन

तप-तप कर जले-बुझे एक - एक दिन
आयु के दिए हैं तुझे एक - एक दिन
है दृढ़ प्रतीति गूँजी पायलें जिनमें तेरी
करेंगे अमर वे मुझे एक - एक दिन

अब तो मुझे टिकानी ही होगी अपनी यह नाव
शक्ति न, फिरूँ इसे ले तट-तट, अंतिम यही पडाव

नौका ने कुल माल उलीचे
झूल रही अब ऊपर-नीचे
कब तक डोर रहूँ मैं खींचे
काँप रहे हैं पाँव !

कर तूफानों की अवहेला
देश-देश फिर चुका अकेला
अब तो बीत चुकी वह वेला
भूल चुका सब दाँव

लहरें क्यों अब मुझे बुलायें !
जिन्हें जहाँ जाना हो. जायें
मैं तो ढूँढूँ दायें-बायें
यहीं कहीं अब ठाँव

अब तो मुझे टिकानी ही होगी अपनी यह नाव
शक्ति न, फिरूँ इसे ले तट-तट, अंतिम यही पड़ाव

जाओ हम रक्खेंगे याद,
जीवन की यह दुखमय वेला,
यह इतिहीन विषाद

हमने देखीं कुसुमावालियाँ
प्रतिपल खिलनेवाली कलियाँ
अब पतझड़ को भी देखेंगे
नव वसंत के बाद

हे ऋषि ! हे आचार्य हमारे !
पूरो शिक्षण - कार्य हमारे
जीवन-यात्रा सफल करें हम,
दो यह आशीर्वाद

जाओ हम रक्खेंगे याद,
जीवन की यह दुखमय वेला,
यह इतिहीन विषाद

(महामना पंडित मदनमोहन मालवीय के काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का का कुलपति-पद छोड़ते समय सन् १९३९ में लिखी गयी मेरी कविता का प्रारंभिक भाग जो स्मृति में रह गया, उनके जन्म की १५०वीं जयन्ती पर सभक्ति समर्पित)

SONG OF THE UNKNOWN

Down below the earth and up above the sky
There is always more than what meets the eye

With space as His robe, putting steps of time
Where goes the Creator none knows
Who gave light beams to the stars in their prime?
From where this creation arose
A mystery we can never solve,
howsoever hard we try
We have only to follow the rules
and not to 'but' and 'why'

What prompted the quietly sleeping Engineer
To create this void of space
Where countless stars emerge and disappear
Without any source or trace
Why at all He maintains these globes
with a constant power-supply?
Whence brings them in their material forms,
where formless lets them lie

Our sun is no bigger than a grain of sand
In a desert lying all around
And round it moves the planetary band
As neutrons in a nuclei bound
When the sun itself is a spark only
in the endless blue we espy
Then think, where stands our soulless earth,
what position we occupy!

Aren't we ourselves like transitory waves
In an eternal ocean of light
Whom picking each moment The Master creates
New figures equally bright!
When even the shining sun is losing
its life-force by and by
What matters, on this pigmy planet,
we mortals live or die

But grieve not, at whatever distance is The Lord
Love always brings Him near
Even leaving to their fate the star-sheep-hoard
With black wolves in their rear
Can a father, howsoever far,
even on the firmament high
Remain uncaring, when he hears
his drowning children cry!
Down below the earth and up above the sky
There is always more than what meets the eye

= ० =

I am the uprooted, I am the outcast
Swinging alternately between doubt and devotion
Sailing a canoe without oars, rudder, or mast
Hell bound for a shore in a shoreless ocean

= ० =

रवीन्द्रसंगीत पर आधृत रवीन्द्रनाथ के दो गीतों के भावानुवाद

आगुनेर परसमणि छुयाउ प्राने
ए जीवन पूर्ण करो दहन-दाने

आमार एई देहखानी तूले धरो
तोमार ओई देवालयेर प्रदीप करो--
निशिदिन आलोक-शिखा जलुक गाने

आँधारेर गाये गाये परस तव
सारा रात फोटाक तारा नव नव
नयनेर दृष्टि होते घूचबे कालो
येखाने पड़बे सेथाय देखबे आलो
व्यथा मोर उठबे जले ऊर्ध्व-पाने

अग्नि की पारसमणि छुआओ प्राण से
यह जीवन पूर्ण करो दहन - दान से

मेरी देह की बाती ज्योति से भरो
निज देवालय का प्रदीप मुझे करो
निशिदिन आलोक-शिखा जले गान से

तम की रग-रग से, पा परस तुम्हारे
सारी रात झलकेंगे नव - नव तारे
दृग संमुख से दूर होगा अँधियाला
जिधर भी पड़ेगी दृष्टि देखूँगा उजाला
छू लूँगा गगन इस व्यथा की तान से

अग्नि की पारसमणि छुआओ प्राण से
यह जीवन पूर्ण करो दहन - दान से

आनंदलोके मंगलालोके विराजो महासुंदर
महिमा तव उच्छवसित महागगन माझे
विश्वजगत मणिभूषण वेष्ठित चरणे

गृहतारक चन्द्र तपन व्याकुल द्रुत वेगे
करिछे पान, करिछे स्नान, अक्षय किरणे

धरणी पर झरे निर्झर मोहन मधु सोता
फूलपल्लव - गीतगंध - सुन्दर - वरणे

बहे जीवन रजनीदिन चिर नूतन धारा
करुणा तव अविश्राम जन्मे मरणे

स्नेह प्रेम दया भक्ति कोमल करे प्राण
कत सांत्वन करो वर्षण संताप हरणे

जगते तव की महोत्सव, वंदन करे विश्व
श्रीसम्पद, भूमास्पद, निर्भयशरणे

आनंदलोक के मंगल आलोक में बिराजो, महासुंदर !

महिमा तुम्हारी विभासित है नभमंडल पर
विश्वजगत मणिभूषन - वेष्टित श्रीचरण में

गृह-तारक, सूर्यचन्द्र व्याकुल अति द्रुत गति से
करते पान करके स्नान अक्षय द्युति-किरण में

धरती पर झरें निर्झर, मोहन मधु शोभा है
पुष्प - राग - रंजित वन - सुषमा मनहरण में

बहे जीवन रजनीदिन, तुम्हारी करुणाधारा
अविरत है प्रवहमान जन्म में मरण में

स्नेह, प्रेम, दया, सांत्वना दें भक्त-मानस को
करते नहीं क्षण भी विलंब दुख - हरण में

अदभुत् है यह जगत-महोत्सव, लोक वंदन-रत
निर्भय है तुम्हारे विश्व-रूप की शरण में

गुलाबजी के काव्य पर कुछ सम्मतियाँ

आप खरे धनी हैं तभी तो आपने वाणी को इतने अलंकार दिये हैं कि वे उसे राजरानी बना देते हैं.

मैथिलीशरण गुप्त

बहुत-सी रचनाएँ, जो कविता की कोटि में आसानी से गुलाब की तरह अपने दल खोल चुकी हैं, सुगन्ध से उन्माद, खिन्न कर देती हैं.

महाकवि निराला

मुक्तबंध कल्पना तथा गहन गंभीर अनुभूतियों का ऐसा अद्भुत परिपाक कम देखने को मिलता है.

महाकवि सुमित्रानंदन पन्त

गुलाबजी छायावाद युग के कृती हैं अतः इनकी रचना में नव्य भाव-समुद्र की तरंगों के सामान आते हैं.

श्रीमती महादेवी वर्मा

गुलाब तरुणाई तथा सौन्दर्य का कवि है. यौवन की रंगीली भावनायें अनायास ही उनके काव्य में फूट पड़ती हैं.

श्रीकृष्ण देव प्रसाद गौड़ 'बेढब बनारसी'

गुलाबजी नैसर्गिक कवि हैं, इसलिए इन्होंने जीवन और प्रकृति के सूक्ष्म तंतुओं को समझा है, उन्हें अपने काव्य में उतारा है.

रायकृष्णदास

आपकी प्रतिभा ने अनेक रूपात्मक विकास कर लिया है. आप हिन्दी के परम समर्थ कवि हो गये हैं, इसमें किसी को किसी प्रकार का संदेह नहीं है.

विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

रचनाएँ पढ़ने पर प्रायः ऐसा लगता है जैसे मेरे ही हृदय का एक टुकड़ा विधाता ने तुम्हारे अन्दर रख दिया है.

बच्चन

आप अपनी शैली के सम्राट हैं.

केदारनाथ मिश्र 'प्रभात'

सचमुच गुलाब नहीं, आप तो खिले हुए गुलाब हैं. आपकी विशेषता है कि आप बिना मुरझाये खिलते रहे हैं. इस महक को मेरा प्यार, दुलार पहुँचे.

कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'

गुलाबजी को मैं अपनी पीढ़ी का सर्वश्रेष्ठ कवि मानता हूँ.

पद्मभूषण रामकुमार वर्मा

इनके शिल्प में अकृत्रिम सौन्दर्य है और इनकी भाषा में अद्भुत चुस्ती के साथ बोलचाल का माधुर्य और प्रवाह है.

विष्णुकांत शास्त्री